

विकास की अवधारणा एवं इसका अधिगम से सम्बन्ध

Concept of Development and its Relationship with Learning

1.1 विकास की अवधारणा

विकास जीवनपर्यन्त चलने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है। विकास की प्रक्रिया में बालक का शारीरिक (Physical), क्रियात्मक (Motor), संज्ञानात्मक (Cognitive) भाषागत (Language), संवेगात्मक (Emotional) एवं सामाजिक (Social) विकास होता है।

बालक में आयु के साथ होने वाले गुणात्मक एवं परिमाणात्मक परिवर्तन सामान्यतया देखे जाते हैं। बालक में क्रमबद्ध रूप से होने वाले सुसंगत परिवर्तन की क्रमिक शृंखला (Sequence chain) को 'विकास' कह सकते हैं।

क्रमबद्ध एवं 'सुसंगत' होना इस बात को संकेतित करता है कि बालक के अन्दर अब तक संघटित गुणात्मक परिवर्तन तथा उसमें आगे होने वाले परिवर्तनों में एक निश्चित सम्बन्ध है। आगे होने वाले परिवर्तन अब तक के परिवर्तनों की परिपक्वता पर निर्भर करते हैं।

अरस्तू के अनुसार, "विकास आन्तरिक एवं बाह्य कारणों से व्यक्ति में परिवर्तन है।"

1.2 विकास के अभिलक्षण (Characteristics)

विकास एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है, जो गर्भधारण से लेकर मृत्युपर्यन्त होती रहती है। मनोवैज्ञानिकों ने विकास के विभिन्न अभिलक्षणों को बताया है, जो इस प्रकार हैं

- विकास आत्मक परिवर्तन प्रायः व्यवस्थित प्रगतिशील और नियमित होते हैं। सामान्य से विशिष्ट और सरल से जटिल और एकीकृत से क्रियात्मक स्तरों की ओर अग्रसर होने के दौरान प्रायः यह एक क्रम का अनुसरण करते हैं।
- विकास बहु-आयामी (Multi-dimensional) होता है अर्थात् कुछ क्षेत्रों में यह बहुत तीव्र वृद्धि को दर्शाता है, जबकि कुछ अन्य क्षेत्रों में धीमी गति से होता है।
- विकास बहुत ही लचीला होता है इसका तात्पर्य है कि एक ही व्यक्ति अपनी पिछली विकास दर की तुलना में किसी विशिष्ट क्षेत्र में अपेक्षाकृत आकस्मिक रूप से अच्छा सुधार प्रदर्शित कर सकता है। एक अच्छा परिवेश शारीरिक शक्ति अथवा स्मृति और बुद्धि के स्तर में अनापेक्षित सुधार ला सकता है।
- विकास आत्मक परिवर्तनों में प्रायः परिपक्वता में क्रियात्मकता (Functional) के स्तर पर उच्च स्तरीय वृद्धि देखने में आती है, उदाहरणस्वरूप शब्दावली के आकार और जटिलता में वृद्धि, परन्तु इस प्रक्रिया में कोई कमी अथवा क्षति भी निहित हो सकती है; जैसे- हड्डियों के घनत्व में कमी या वृद्धावस्था में याददाश्त (स्मृति) का कमजोर होना।
- विकास आत्मक परिवर्तन 'मात्रात्मक' (Quantitative) हो सकते हैं; जैसे - आयु बढ़ने के साथ कद बढ़ना अथवा 'गुणात्मक' जैसे नैतिक मूल्यों का निर्माण।
- किशोरावस्था के दौरान शरीर के साथ-साथ संवेगात्मक, सामाजिक और संज्ञानात्मक क्रियात्मकता में भी तेजी से परिवर्तन दिखाई देते हैं।
- विकास प्रासंगिक हो सकता है। यह ऐतिहासिक, परिवेशीय और सामाजिक-सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित हो सकता है।
- विकास आत्मक परिवर्तनों की दर अथवा गति में उल्लेखनीय 'व्यक्तिगत अन्तर' हो सकते हैं। यह अन्तर आनुवंशिक घटकों अथवा परिवेशीय प्रभावों के कारण हो सकते हैं। कुछ बच्चे अपनी आयु की तुलना में अत्यधिक पूर्व-चेतन (जागरूक) हो सकते हैं, जबकि कुछ बच्चों में विकास की गति बहुत धीमी होती है। उदाहरणस्वरूप, यद्यपि एक औसत बच्चा 3 शब्दों के वाक्य 3 वर्ष की आयु में बोलना शुरू कर देता है, परन्तु कुछ ऐसे बच्चे भी हो सकते हैं, जो 2 वर्ष के होने से बहुत पहले ही ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। विकास के मुख्य आयाम - शारीरिक, सामाजिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक

1.3 विकास के आयाम (Dimensions)

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से विकास को निम्नलिखित भागों में बाँटा है

1.3.1 शारीरिक विकास

शरीर के बाह्य परिवर्तन जैसे-ऊँचाई, शारीरिक अनुपात में वृद्धि इत्यादि जिन्हें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, किन्तु शरीर के आन्तरिक अवयवों के परिवर्तन बाह्य रूप से दिखाई तो नहीं पड़ते, किन्तु शरीर के भीतर इनका समुचित विकास होता रहता है।

- प्रारम्भ में शिशु अपने हर प्रकार के कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है, धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम होता जाता है।
- शारीरिक विकास पर बालक के आनुवंशिक गुणों का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त बालक के परिवेश एवं उसकी देखभाल का भी उसके शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चे को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार उपलब्ध नहीं हो रहा है, तो उसके विकास की सामान्य गति की आशा कैसे की जा सकती है?
- बालक की वृद्धि एवं विकास के बारे में शिक्षकों को पर्याप्त जानकारी इसलिए भी रखना अनिवार्य है, क्योंकि बच्चों की रुचियाँ, इच्छाएँ, दृष्टिकोण एवं एक तरह से उसका पूर्ण व्यवहार शारीरिक वृद्धि एवं विकास पर ही निर्भर करता है।
- बच्चों की शारीरिक वृद्धि एवं विकास (Physical Development) के सामान्य ढाँचे से परिचित होकर अध्यापक यह जान सकता है कि एक विशेष आयु स्तर पर बच्चों से क्या आशा की जा सकती है?

1.3.2 मानसिक विकास

संज्ञानात्मक या मानसिक विकास (Cognitive or Mental Development) से तात्पर्य बालक की उन सभी मानसिक योग्यताओं एवं क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है, जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में अपनी मानसिक शक्तियों का पर्याप्त उपयोग कर पाता है।

- कल्पना करना, स्मरण करना, विचार करना, निरीक्षण करना, समस्या-समाधान करना, निर्णय लेना इत्यादि की योग्यता संज्ञानात्मक विकास के फलस्वरूप ही विकसित होते हैं।
- जन्म के समय बालक में इस प्रकार की योग्यता का अभाव होता है, धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें मानसिक विकास की गति भी बढ़ती रहती है।
- संज्ञानात्मक विकास के बारे में शिक्षकों को पर्याप्त जानकारी इसलिए होनी चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में वह बालकों की इससे सम्बन्धित समस्याओं का समाधान नहीं कर पाएगा। यदि कोई बालक मानसिक रूप से कमजोर है, तो इसके क्या कारण हैं, यह जानना उसके उपचार के लिए आवश्यक है।
- विभिन्न अवस्थाओं और आयु-स्तर पर बच्चों की मानसिक वृद्धि और विकास को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने में भी इससे सहायता मिल सकती है।

1.3.3 सांवेगिक विकास

संवेग, जिसे भाव भी कहा जाता है का अर्थ होता है ऐसी अवस्था जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। भय, क्रोध, घृणा, आश्चर्य, स्नेह, खुशी इत्यादि संवेग के उदाहरण हैं। बालक में आयु बढ़ने के साथ ही इन संवेगों का विकास भी (Emotional Development) होता रहता है।

- संवेगात्मक विकास मानव वृद्धि एवं विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसकी शारीरिक वृद्धि एवं विकास को ही नहीं, बल्कि बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास को भी प्रभावित करता है।
- बालक के सन्तुलित विकास में उसके संवेगात्मक विकास की अहम भूमिका होती है। बालक के संवेगात्मक विकास पर पारिवारिक वातावरण भी बहुत प्रभाव डालता है।

- विद्यालय के परिवेश और क्रिया-कलापों को उचित प्रकार से संगठित कर अध्यापक बच्चों के संवेगात्मक विकास में भरपूर योगदान दे सकते हैं।

1.3.4 क्रियात्मक विकास

क्रियात्मक विकास (Motor Development) का अर्थ होता है - व्यक्ति की कार्य करने की शक्तियों, क्षमताओं या योग्यताओं का विकास। क्रियात्मक शक्तियों, क्षमताओं या योग्यताओं का अर्थ होता है ऐसी शारीरिक गतिविधियाँ या क्रियाएँ जिनको सम्पन्न करने के लिए माँसपेशियों एवं तन्त्रिकाओं की गतिविधियों के संयोजन की आवश्यकता होती है; जैसे - चलना, बैठना इत्यादि।

- एक नवजात शिशु ऐसे कार्य करने में अक्षम होता है। शारीरिक वृद्धि एवं विकास के साथ ही उम्र बढ़ने के साथ उसमें इस तरह की योग्यताओं का भी विकास होने लगता है।
- इसके कारण बालक को आत्मविश्वास अर्जित करने में भी सहायता मिलती है। पर्याप्त क्रियात्मक विकास के अभाव में बालक में विभिन्न प्रकार के कौशलों के विकास में बाधा पहुँचती है।
- क्रियात्मक विकास के स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया का ज्ञान होना शिक्षकों के लिए आवश्यक है।
- इसी ज्ञान के आधार पर ही वह बालक में विभिन्न कौशलों का विकास करवाने में सहायक हो सकता है।
- जिन बालकों में क्रियात्मक विकास सामान्य से कम होता है, उनके समायोजन एवं विकास हेतु विशेष कार्य करने की आवश्यकता होती है।

1.3.5 भाषायी विकास

भाषा के विकास (Linguistic Development) को एक प्रकार से संज्ञानात्मक (भावनात्मक) विकास माना जाता है।

- भाषा के माध्यम से बालक अपने मन के भावों, विचारों को एक-दूसरे के सामने रखता है एवं दूसरे के भावों, विचारों एवं भावनाओं को समझता है।
- भाषायी ज्ञान के अन्तर्गत बोलकर विचारों को प्रकट करना, संकेत के माध्यम से अपनी बात रखना तथा लिखकर अपनी बातों को रखना इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।
- बालक 6 माह से 1 वर्ष के बीच कुछ शब्दों को समझने एवं बोलने लगता है।
- 3 वर्ष की अवस्था में वह कुछ छोटे वाक्यों को बोलने लगता है। 15 से 16 वर्षों के बीच काफी शब्दों की समझ विकसित हो जाती है।
- भाषायी विकास का क्रम एक क्रमिक विकास होता है। इसके माध्यम से कौशल में वृद्धि होती है।

1.3.6 सामाजिक विकास

सामाजिक विकास (Social Development) का शाब्दिक अर्थ होता है - समाज के अन्तर्गत रहकर विभिन्न पहलुओं को सीखना। समाज के अन्तर्गत ही चरित्र निर्माण, अच्छा व्यवहार (सद्गुण) तथा जीवन से सम्बन्धित व्यावहारिक शिक्षा इत्यादि का विकास होता है।

- बालकों के विकास की प्रथम पाठशाला परिवार को माना गया है, तत्पश्चात् समाज को। सामाजिक विकास के माध्यम से बालकों का जुड़ाव व्यापक हो जाता है।
- सम्बन्धों के दायरे में वृद्धि अर्थात् माता-पिता एवं भाई-बहन के अतिरिक्त दोस्तों/मित्रों से जुड़ना।
- सामाजिक विकास के माध्यम से बालकों में सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामुदायिक विकास इत्यादि की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
- बालकों के मन में आत्म-सम्मान, स्वाभिमान तथा विचारधारा का जन्म होता है।
- बालक समाज के माध्यम से ही अपने आदर्श व्यक्तियों का चयन करता है तथा कुछ बनने की प्रेरणा उनसे लेता है।

- एक शिक्षित समाज में ही व्यक्ति का उत्तम विकास सम्भव हो सकता है।

1.4 वृद्धि

वृद्धि (Growth) का अर्थ होता है बालकों की शारीरिक संरचना का विकास जिसके अन्तर्गत लम्बाई, भार, मोटाई तथा अन्य अंगों का विकास आता है। वृद्धि की प्रक्रिया आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में होती है, यह एक निश्चित आयु तक होती है तथा भौतिक पहलू (physical aspect) में ही सम्भव है। वृद्धि पर आनुवंशिकता का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ते हैं।

1.4.1 वृद्धि एवं विकास में अन्तर

वृद्धि एवं विकास का प्रयोग लोग प्रायः पर्यायवाची शब्दों के रूप में करते हैं। अवधारणात्मक रूप से देखा जाए, तो इन दोनों में अन्तर होता है। इस अन्तर को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं

आधार	वृद्धि	विकास
परिमाणात्मक	वृद्धि शब्द का प्रयोग परिमाणात्मक परिवर्तनों; जैसे- बच्चे के बड़े होने के साथ उसके आकार, लम्बाई, ऊँचाई इत्यादि के लिए होता है।	विकास शब्द का प्रयोग परिमाणात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ व्यावहारिक परिवर्तनों; जैसे - कार्यकुशलता, कार्यक्षमता, व्यवहार में सुधार इत्यादि के लिए भी होता है।
क्षेत्र	वृद्धि विकास की प्रक्रिया का एक चरण होता है। इसका क्षेत्र सीमित होता है।	विकास अपने-आप में एक विस्तृत अर्थ रखता है। वृद्धि इसका एक भाग होती है।
परिपक्वता	वृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती। बालक के परिपक्व होने के साथ ही यह रुक जाती है।	विकास एक सतत प्रक्रिया है। बालक के परिपक्व होने के बाद भी यह चलती रहती है।
विकास	बालक की शारीरिक वृद्धि हो रही है इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि उसमें विकास भी हो रहा है। अतः यह भौतिक विकास को दर्शाता है।	बालक में विकास के लिए भी वृद्धि आवश्यक नहीं है। अतः यह गुणात्मक विकास को दर्शाता है।

1.4.2 वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करने वाले अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं, जो निम्नलिखित हैं

1. पोषण

- यह वृद्धि तथा विकास का महत्वपूर्ण घटक होता है। बालक को विकास के लिए उचित मात्रा में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण इत्यादि की आवश्यकता होती है।
- हमारे खान-पान में उपयुक्त पोषक तत्वों की कमी होगी तो वृद्धि एवं विकास प्रभावित होगा।

2. वृद्धि

यह विकास के अन्य कारकों में सबसे महत्वपूर्ण कारक होता है। बौद्धिक विकास जितना उच्चतर होगा, हमारे अन्दर समझदारी, नैतिकता, भावनात्मकता, तर्कशीलता इत्यादि का विकास उतना ही उत्तम होगा।

3. वंशानुगत

वंशानुगत (Heredity) स्थिति शारीरिक एवं मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माता-पिता के गुण एवं अवगुण का प्रभाव बच्चों पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

4. लिंग

सामान्यतया लड़के एवं लड़कियों में विकास के क्रम में विविधता देखी जाती है। किसी अवस्था में विकास की गति लड़कियों में तीव्र होती है तो किसी अवस्था में लड़कों में।

5. वायु एवं प्रकाश

- शरीर को स्वस्थ रखने के लिए स्वच्छ वायु की आवश्यकता होती है, अगर वायु स्वच्छ न मिले तो बालक बीमार हो सकता है एवं इनके अभाव में कार्य करने की क्षमता प्रभावित हो सकती है।
- शारीरिक विकास के लिए सूर्य के प्रकाश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि सूर्य के प्रकाश में विटामिन-डी की प्राप्ति होती है, जो विकास के लिए अपरिहार्य है।

6. अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine Glands) से निकलने वाला हार्मोन बालक एवं बालिकाओं के शारीरिक विकास को प्रभावित करता है।

7. शारीरिक क्रिया

जीवन को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम बहुत जरूरी है। यह मानव की आयु बढ़ाता है। यह व्यक्ति को सक्रिय (Active) बनाए रखता है।

1.4.3 वृद्धि की अवस्थाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने मानव वृद्धि को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभाजित किया है, जो निम्न प्रकार हैं।

1. शैशवकाल

- इसमें जन्म से 2 वर्ष तक बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास तेजी से होता है। बालक इस अवस्था में पूर्णरूप से माता-पिता पर आश्रित रहता है।
- इस अवस्था में संवेगात्मक विकास भी होता है तथा इस अवस्था में सीखने की क्षमता की गति तीव्र होती है जब नवजात शिशु शैशवकाल (Infancy) की ओर अग्रसर होता है, तो उसके अन्दर प्यार व स्नेह की आवश्यकता बढ़ने लगती है।

2. बाल्यकाल

बाल्यकाल (Childhood) को निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है।

(i) पूर्व बाल्यकाल

- सामान्यतया 2 से 6 वर्ष की अवस्था बालकों का बाहरी जुड़ाव होने लगता है। बच्चों में (नकल करने की प्रवृत्ति) अनुकरण एवं दोहराने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
- समाजीकरण एवं जिज्ञासा दोनों में वृद्धि होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह काल भाषा सीखने की सर्वोत्तम अवस्था है।

(ii) उत्तर बाल्यकाल

- 6 से 12 वर्ष तक की अवस्था। इस अवस्था में बच्चों में बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, तर्कशीलता इत्यादि का व्यापक विकास होता है।
- पढ़ने की रुचि में वृद्धि के साथ-साथ स्मरण क्षमता का भी विकास होता है। बच्चों में समूह भावना का विकास होता है अर्थात् समूह में खेलना, समूह में रहना, समलैंगिक व्यक्ति को ही मित्र बनाना इत्यादि।
- जीवन में अनुशासन तथा नियमों की महत्ता समझ में आने लगती है।
- खोजी दृष्टिकोण एवं घूमने की प्रवृत्ति का विकास।

3. किशोरावस्था

- 12 से 18 वर्ष के बीच की अवस्था अत्यन्त जटिल अवस्था तथा साथ ही व्यक्ति के शारीरिक संरचना में परिवर्तन देखने को मिलता है।
- यह वह समय होता है, जिसमें बालक बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर उन्मुख होता है।
- इस अवस्था में किशोरों की लम्बाई एवं भार दोनों में वृद्धि होती है, साथ ही माँसपेशियों में भी वृद्धि होती है।
- 12-14 वर्ष की आयु के बीच लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की लम्बाई एवं माँसपेशियों में तेजी से वृद्धि होती है एवं 14-18 वर्ष की आयु के बीच लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की लम्बाई एवं माँसपेशियाँ तेजी से बढ़ती हैं।
- इस काल में प्रजनन अंग विकसित होने लगते हैं एवं उनकी काम की मूल प्रवृत्ति जाग्रत होती है।
- इस अवस्था में किशोर दुश्चिन्ता (दुविधा) एवं स्वयं से सम्बन्धित सरोकार (मतलब) का भाव रखते हैं। 'मैं कौन हूँ' 'मैं क्या हूँ' 'मैं भी कुछ हूँ' जैसी प्रबल भावनाओं का विकास इस अवस्था में होने लगता है।
- इस अवस्था में किशोर-किशोरियों की बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है, उनकी ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता बढ़ जाती है, स्मरण शक्ति बढ़ जाती है एवं उनमें स्थायित्व आने लगता है।
- इस अवस्था में मित्र बनाने की प्रवृत्ति तीव्र होती है एवं सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है। इस अवस्था में नशा या अपराध की ओर उन्मुख होने की अधिक सम्भावना रहती है।
- किशोरावस्था के शारीरिक बदलावों का प्रभाव किशोर जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर पड़ता है। अतः इस अवस्था में उन्हें शिक्षकों, मित्रों एवं अभिभावकों के सही मार्गदर्शन एवं सलाह की आवश्यकता पड़ती है।

4. युवा प्रौढ़ावस्था

- सामान्यतया 18 से 40 वर्ष तक।
- किशोरावस्था एवं युवा प्रौढ़ावस्था (Adulthood) की कोई निश्चित उम्र नहीं होती। यह अवस्था मानव विकास में एक निश्चित परिपक्वता ग्रहण करने से प्राप्त होती है।

5. परिपक्व प्रौढ़ावस्था

- सामान्यतया 40 से 65 वर्ष की अवस्था।

- शारीरिक विकास में गिरावट आने लगती है अर्थात् बालों का सफेद होना, माँसपेशियों में ढीलापन तथा चेहरे पर झुर्रियाँ आना इत्यादि ।

6. वृद्ध प्रौढ़ावस्था

- 65 से अधिक वर्ष की अवस्था ।
- शारीरिक क्षमता का कमजोर होना।
- सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापों के प्रति रुझान ।

1.5 अधिगम

अधिगम (Learning) का अर्थ होता है - सीखना। अधिगम एक प्रक्रिया है, जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है एवं जिसके द्वारा हम कुछ ज्ञान अर्जित करते हैं या जिसके द्वारा हमारे व्यवहार में परिवर्तन होता है। जन्म के तुरन्त बाद से ही बालक सीखना प्रारम्भ कर देता है। अधिगम व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। इसके द्वारा जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। अधिगम के बाद व्यक्ति स्वयं और दुनिया को समझने के योग्य हो पाता है। यदि छात्र किसी विषय वस्तु के ज्ञान के आधार पर कुछ परिवर्तन करने एवं उत्पादन करने में सक्षम हो गया हो, तो उसके सीखने की प्रक्रिया को अधिगम कहा जाएगा। सार्थक अधिगम ठोस चीजों एवं मानसिक द्योतकों को प्रस्तुत करने व उनमें बदलाव लाने की उत्पादक प्रक्रिया है न कि जानकारी इकट्ठा कर उसे रटने की प्रक्रिया।

अधिगम के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार दी गई हैं। **गेट्स** के अनुसार, " अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपान्तर लाना ही अधिगम है। "

ई.ए. पील के अनुसार, "अधिगम व्यक्ति में एक परिवर्तन है, जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसरण में होता है।" **क्रो** एवं **क्रो** के अनुसार, "सीखना आदतों, ज्ञान एवं अभिवृत्तियों का अर्जन है। इसमें कार्यों को करने के नवीन तरीके सम्मिलित हैं और इसकी शुरुआत व्यक्ति द्वारा किसी भी बाधा को दूर करने अथवा नवीन परिस्थितियों में अपने समायोजन को लेकर होती है। इसके माध्यम से व्यवहार में उत्तरोत्तर परिवर्तन होता रहता है। यह व्यक्ति को अपने अभिप्राय अथवा लक्ष्य को पाने में समर्थ बनाती है। "

1.6 विकास का अधिगम से सम्बन्ध

विकास के विभिन्न पहलुओं का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है एवं ये सभी अधिगम को प्रभावित करते हैं।

शारीरिक विकास, विशेषकर छोटे बच्चों में मानसिक व संज्ञानात्मक विकास में मददगार है। सभी बच्चों की खेल की गतिविधियों में सहभागिता उनके शारीरिक व मनो-सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। मानसिक और भाषायी विकास, सामाजिक विकास एवं अधिगम को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

बालकों का विकास एवं अधिगम एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसके साथ बालकों में उन सिद्धान्तों का भी विकास होता है, जो बच्चे प्राकृतिक व सामाजिक दुनिया के बारे में बनाते हैं। इसमें दूसरों के साथ अपने रिश्ते के सम्बन्ध के विभिन्न सिद्धान्त भी शामिल हैं, जिनके आधार पर उन्हें यह पता चलता है कि चीजें जैसी हैं वैसी क्यों हैं? कारण और कारक के बीच क्या सम्बन्ध है और कार्य व निर्णय लेने के क्या आधार हैं?

अर्थ निकालना, अमूर्त सोच (abstract thought) की क्षमता विकसित करना, विवेचना व कार्य, अधिगम की प्रक्रिया के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। दृष्टिकोण, भावनाएँ और आदर्श, संज्ञानात्मक विकास के अभिन्न हिस्से हैं। और भाषा विकास, मानसिक चित्रण, अवधारणाओं व तार्किकता से इनका गहरा सम्बन्ध है। बच्चे व्यक्तिगत स्तर पर एवं दूसरों से भी विभिन्न तरीकों से सीखते हैं- अनुभव के माध्यम से, स्वयं चीजें करने व स्वयं बनाने से, प्रयोग करने से, पढ़ने से, विमर्श करने, पूछने, सुनने, उस पर सोचने व मनन करने से तथा गतिविधि या लेखन के जरिए अभिव्यक्त करने से अपने विकास के मार्ग में उन्हें इस प्रकार के अवसर मिलने चाहिए।

वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त

(Principles of Growth and Development)

व्यक्ति विशेष में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन कुछ विशेष सिद्धान्तों पर ढले हुए प्रतीत होते हैं। इन सिद्धान्तों को वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त कहा जाता है। नीचे की पंक्तियों में हम इन्हीं सिद्धान्तों की चर्चा करने जा रहे हैं:

1. निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of continuity) — यह सिद्धान्त बताता है कि विकास एक न रुकने वाली प्रक्रिया है। माँ के गर्भ से ही यह प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्यु पर्यन्त निरन्तर चलती ही रहती है। एक छोटे से नगण्य आकार से अपना जीवन प्रारम्भ करके हम सबके व्यक्तित्व के सभी पक्षों-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि का सम्पूर्ण विकास इसी निरन्तरता के गुण के कारण भली-भाँति सम्पन्न होता रहता है।

2. वृद्धि और विकास की गति की दर एक सी नहीं रहती (Rate of growth and development is not uniform)— यद्यपि विकास बराबर होता रहता है, परन्तु इसकी गति सब अवस्थाओं में एक जैसी नहीं रहती। शैशवावस्था के शुरू के वर्षों में यह गति कुछ तीव्र होती है, परन्तु बाद के वर्षों में यह मन्द पड़ जाती है। पुनः किशोरावस्था के प्रारम्भ में इस गति में तेज़ी से वृद्धि होती है परन्तु यह अधिक समय तक नहीं बनी रहती। इस प्रकार वृद्धि और विकास की गति में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। किसी भी अवस्था में यह एक जैसी नहीं रह पाती।

3. वैयक्तिक अन्तर का सिद्धान्त (Principle of individual differences) — इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों का विकास और वृद्धि उनकी अपनी वैयक्तिकता (Individuality) के अनुरूप होती है। वे अपनी स्वाभाविक गति से ही वृद्धि और विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते रहते हैं और इसी कारण उनमें पर्याप्त विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। कोई भी एक बालक वृद्धि और विकास की दृष्टि से किसी अन्य बालक के समरूप नहीं होता।

4. विकास क्रम की एकरूपता (Uniformity of pattern) - विकास की गति एक जैसी न होने तथा पर्याप्त वैयक्तिक अन्तर पाए जाने पर भी विकास क्रम में कुछ एकरूपता के दर्शन होते हैं। इस क्रम में एक ही जाति विशेष के सभी सदस्यों में कुछ एक जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य जाति के सभी बालकों की वृद्धि सिर की ओर से प्रारम्भ होती है। इसी तरह बालकों के गत्यात्मक और भाषा विकास में भी एक निश्चित प्रतिमान (pattern) और क्रम के दर्शन किए जा सकते हैं।

5. विकास सामान्य से विशेष की ओर चलता है (Development proceeds from general to specific responses)—विकास और वृद्धि की सभी दिशाओं में विशिष्ट क्रियाओं से पहले उनके सामान्य रूप के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए अपने हाथों से कुछ चीज़ पकड़ने से पहले बालक इधर उधर यूँ ही हाथ मारने या फैलाने की चेष्टा करता है। इसी तरह शुरू में एक नवजात शिशु के रोने और चिल्लाने में उसके सभी अंग प्रत्यंग भाग लेते हैं परन्तु बाद में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप यह क्रियाएँ उसकी आंखों और वाक तंत्र तक सीमित हो जाती हैं। भाषा विकास में भी बालक विशेष शब्दों से पहले सामान्य शब्द ही सीखता है। पहले वह सभी व्यक्तियों को 'पापा' कह कर ही संबोधित करता है, इसके पश्चात् ही वह केवल अपने पिता को 'पापा' कह कर संबोधित करना सीखता है।

6. एकीकरण का सिद्धान्त (Principle of integration) — विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धान्त का पालन करती है। इसके अनुसार बालक अपने सम्पूर्ण अंग को और फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है। इसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है। सामान्य से विशेष की ओर बदलते हुए विशेष प्रतिक्रियाओं तथा चेष्टाओं को

इकट्ठे रूप में प्रयोग में लाना सीखता है। उदाहरण के लिए एक बालक पहले पूरे हाथ को फिर उंगलियों को और फिर हाथ एवं उंगलियों को एक साथ चलाना सीखता है।

7. परस्पर संबंध का सिद्धान्त (Principle of inter-relation) — विकास की सभी दशाएँ - शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि - एक-दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। इनमें से किसी भी एक दिशा में होने वाला विकास अन्य सभी दिशाओं में होने वाले विकास को पूरी तरह प्रभावित करने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों में औसत से अधिक बुद्धि होती है, वे शारीरिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से भी काफी आगे बढ़े हुए पाए जाते हैं। दूसरी ओर एक क्षेत्र में पाई जाने वाली न्यूनता दूसरे क्षेत्र में हो रही प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। यही कारण है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़े बालक संवेगात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास में भी उतने ही पीछे रह जाते हैं।

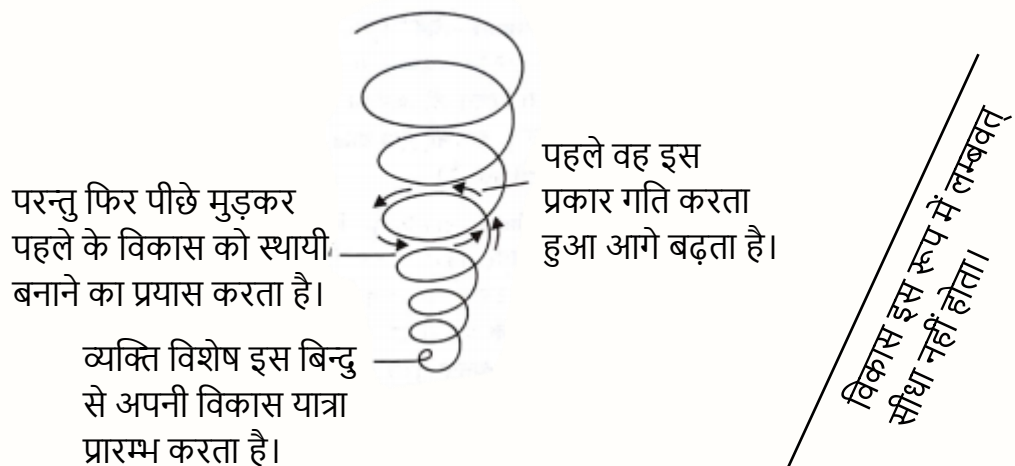
8. विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है (Development is predictable) — एक बालक की अपनी वृद्धि और विकास की गति को ध्यान में रख कर उसके आगे बढ़ने की दिशा और स्वरूप के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक बालक की कलाई की हड्डियों का एक्स किरणों (x-ray) से लिया जाने वाला चित्र यह बता सकता है कि उसका आकार प्रकार आगे जा कर किस प्रकार का होगा। इसी तरह बालक की इस समय की मानसिक योग्यताओं के ज्ञान के सहारे उस के आगे के मानसिक विकास के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

9. विकास की दिशा का सिद्धान्त (Principle of developmental direction) — इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया पूर्व निश्चित दिशा में आगे बढ़ती है। कुप्पूस्वामी ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि विकास Cephalo- caudal और Proximo distal क्रम में होता है।

Cephalo-caudal क्रम का विकास लम्बवत् रूप में (longitudinal direction) सिर से पैर की ओर होता है। सबसे पहले बालक अपने सिर और भुजाओं की गति पर नियंत्रण करना सीखता है और उसके बाद फिर टाँगों को। इसके बाद ही वह अच्छी तरह बिना सहारे खड़ा होना और चलना सीखता है।

Proximo-distal क्रम के अनुसार विकास का क्रम केन्द्र से प्रारम्भ होता है, फिर बाहरी विकास होता है और इसके बाद सम्पूर्ण विकास। उदाहरण के लिए, पहले रीढ़ की हड्डी का विकास होता है और उसके बाद भुजाओं, हाथ तथा हाथ की उँगलियों का तथा तत्पश्चात् इन सबका पूर्ण रूप से संयुक्त विकास होता है।

10. विकास लम्बवत् सीधा न हो कर वर्तुलाकार होता है (Development is spiral and not linear) — बालक का विकास लम्बवत् सीधा (Linear) न हो कर वर्तुलाकार (Spiral) होता है। वह एक सी गति से सीधा चल कर विकास को प्राप्त नहीं होता, बल्कि बढ़ते हुए पीछे हट कर अपने विकास को परिपक्व और स्थायी बनाते हुए (वर्तुलाकार आकृति की तरह) आगे बढ़ता है। किसी एक अवस्था में वह तेज़ी से आगे बढ़ते हुए उसी गति से आगे नहीं जाता, बल्कि अपनी विकास की गति को धीमा करते हुए आगे के वर्षों में विश्राम लेता हुआ प्रतीत होता है ताकि प्राप्त वृद्धि और विकास को स्थायी रूप दिया जा सके। यह सब करने के पश्चात् ही वह आगामी वर्षों में फिर कुछ आगे बढ़ने की चेष्टा करता है। विकास की इस वर्तुलाकार गति को चित्र 5.1 द्वारा समझा जा सकता है।



चित्र 5.1 बालक के विकास की दशा ।

11. वृद्धि और विकास की क्रिया वंशानुक्रम और वातावरण का संयुक्त परिणाम है (Growth and development is a joint product of both heredity and environment) – बालक की वृद्धि और विकास को किसी स्तर पर वंशानुक्रम और वातावरण की संयुक्त देन माना जाता है। दूसरे शब्दों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम जहां बुनियाद का कार्य करता है वहां वातावरण इस बुनियाद पर बनाए जाने वाले व्यक्तित्व संबंधी भवन के लिए आवश्यक सामग्री एवं वातावरण जुटाने में सहयोग देता है। अतः वृद्धि और विकास की प्रक्रियाओं में इन दोनों को समान महत्त्व दिया जाना आवश्यक हो जाता है।

आनुवंशिकता एवं वातावरण का प्रभाव Influence of Heredity and Environment

3.1 आनुवंशिकता का अर्थ

आनुवंशिक या वंशानुगत गुणों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरण को आनुवंशिकता या वंशानुक्रम (heredity) कहा जाता है। आनुवंशिकता के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक गुणों का स्थानान्तरण बालकों में होता है।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार, " शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का माता-पिता से सन्तानों में हस्तान्तरण होना आनुवंशिकता कहलाता है । "

एच ए पेटरसन एवं वुडवर्थ के अनुसार, "व्यक्ति अपने माता-पिता के माध्यम से पूर्वजों की, जो विशेषताएँ प्राप्त करता है, उसे वंशानुक्रम कहते हैं। "

3.2 आनुवंशिकता का प्रभाव

आनुवंशिकता का प्रभाव (Effect of Heredity) विभिन्न लक्षणों जैसे – शारीरिक बुद्धि तथा चरित्र पर अलग-अलग पड़ता है।

3.2.1 शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव

- बालक के रंग-रूप, आकार, शारीरिक गठन, ऊँचाई इत्यादि के निर्धारण में उसके आनुवंशिक गुणों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

- अधिकांश जुड़वाँ भाई द्वि-युग्मक होते हैं, जो दो पृथक् युग्मजों (zygote) से विकसित होते हैं। यह भाइयों जैसे जुड़वाँ भाई और बहनों की तरह मिलते-जुलते होते हैं, परन्तु वे अनेक प्रकार से परस्पर एक-दूसरे से भिन्न भी होते हैं। बालक के आनुवंशिक गुण उसकी वृद्धि एवं विकास को भी प्रभावित करते हैं।

3.2.2 बुद्धि पर प्रभाव

- बुद्धि को अधिगम (Learning) की योग्यता, समायोजन योग्यता, निर्णय लेने की क्षमता इत्यादि के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिस बालक के सीखने की गति अधिक होती है, उसका मानसिक विकास भी तीव्र गति से होगा। बालक अपने परिवार, समाज एवं विद्यालय में अपने आपको किस तरह समायोजित करता है यह उसकी बुद्धि पर निर्भर करता है।

- **गोडार्ड** का मत है कि "मन्दबुद्धि माता-पिता की सन्तान मन्दबुद्धि और तीव्रबुद्धि माता-पिता की सन्तान तीव्रबुद्धि वाली होती है।" मानसिक क्षमता के अनुकूल ही बालक में संवेगात्मक क्षमता का विकास होता है।

- बालक में जिस प्रकार के संवेगों का जिस रूप में विकास होगा वह उसके सामाजिक, मानसिक, नैतिक, शारीरिक तथा भाषा सम्बन्धी विकास को पूरी तरह प्रभावित करने की क्षमता रखता है। यदि बालक अत्यधिक क्रोधित या भयभीत रहता है अथवा यदि उसमें ईर्ष्या एवं वैमनस्यता की भावना अधिक होती है, तो उसके विकास की प्रक्रिया पर इन सबका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है।

- संवेगात्मक रूप से असन्तुलित बालक पढ़ाई में या किसी अन्य गम्भीर कार्यों में ध्यान नहीं दे पाते, फलस्वरूप उनका मानसिक विकास भी प्रभावित होता है।

3.2.3 चरित्र पर प्रभाव

- डगडेल नामक मनोवैज्ञानिक ने अपने अनुसन्धान के आधार पर यह बताया कि माता-पिता के चरित्र का प्रभाव भी उसके बच्चे पर पड़ता है।

- व्यक्ति के चरित्र में उसके वंशानुगत कारकों का प्रभाव स्पष्ट तौर पर देखा जाता है, इसलिए बच्चे पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। डडेल ने 1877 ई. में ज्यूक नामक व्यक्ति के वंशजों का अध्ययन करके यह बात सिद्ध की।

3.3 वातावरण का अर्थ एवं परिभाषा

वातावरण का अर्थ पर्यावरण है। पर्यावरण दो शब्दों परि एवं आवरण के मिलने से बना है। परि का अर्थ होता है चारों ओर, आवरण का अर्थ होता है ढकना। इस प्रकार पर्यावरण का अर्थ होता है चारों ओर से घेरने वाला प्राणी या मनुष्य जल, वायु, वनस्पति, पहाड़, पठार, नदी, वस्तु आदि से घिरा हुआ है यही सब मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। इसे वातावरण या पोषण के नाम से भी जाना जाता है। वातावरण मानव जीवन के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। मानव विकास में जितना योगदान आनुवंशिकता का है उतना ही वातावरण का भी। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिक वातावरण को सामाजिक वंशानुक्रम भी कहते हैं। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने वंशानुक्रम से अधिक वातावरण को महत्व दिया है।

एनास्टैसी के अनुसार, "पर्यावरण वह हर चीज है, जो व्यक्ति के जीवन के अलावा उसे प्रभावित करती है।"

जिसबर्ट के अनुसार, "जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है वह पर्यावरण होता है।"

हॉलैण्ड एवं डगलास के अनुसार, "जीव जगत् के प्राणियों के विकास, परिपक्वता, प्रकृति, व्यवहार तथा जीवन शैली को प्रभावित करने वाले बाह्य समस्त शक्तियों, परिस्थितियों तथा घटना को पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है और उन्हीं की सहायता से पर्यावरण का वर्णन किया जाता है।"

3.4 वातावरण का प्रभाव

वातावरण के सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रभावों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा रहा है

1. शारीरिक अन्तर का प्रभाव

- व्यक्ति के शारीरिक लक्षण वैसे तो वंशानुगत होते हैं, किन्तु इस पर वातावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का कद छोटा होता है, जबकि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का शरीर लम्बा एवं गठीला होता है।
- अनेक पीढ़ियों से निवास स्थल में परिवर्तन करने के बाद उपरोक्त लोगों के कद एवं रंग में अन्तर वातावरण के प्रभाव के कारण देखा गया है।

2. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव

- कुछ प्रजातियों की बौद्धिक श्रेष्ठता का कारण वंशानुगत न होकर वातावरणीय होता है।
- वे लोग इसलिए अधिक विकास कर पाते हैं, क्योंकि उनके पास श्रेष्ठ शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक वातावरण उपलब्ध होता है। उदाहरणस्वरूप यदि एक महान् व्यक्ति के पुत्र को ऐसी जगह पर छोड़ दिया जाए, जहाँ शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक वातावरण उपलब्ध न हो, तो उसका अपने पिता की तरह महान् बनना सम्भव नहीं हो सकता।

3. व्यक्तित्व पर प्रभाव

- व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। कोई भी व्यक्ति उपयुक्त वातावरण में रहकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके महान् बन सकता है। ऐसे कई उदाहरण हमारे आस-पास देखने को मिलते हैं, जिनमें निर्धन परिवारों में जन्मे व्यक्ति भी अपने परिश्रम एवं लगन से श्रेष्ठ सफलताएँ प्राप्त करने में सक्षम हो जाते हैं।

निष्कर्ष- बालक का सर्वांगीण विकास आनुवांशिकता एवं वातावरण दोनों की पारस्परिक अन्तक्रिया से होता है।

समाजीकरण की प्रक्रिया Socialisation Process

4.1 समाजीकरण एवं इससे सम्बन्धित सिद्धान्त

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है बिना समाज के किसी भी व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। समाजीकरण केवल कौशल क्षमता प्राप्त करना, अनुकरण करना ही नहीं अपितु इसके माध्यम से व्यक्ति जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के व्यवहार को भी सीखता है यथा- परोपकार करना, आत्मनिर्भर होना, सभ्य एवं सुशील बनना

इत्यादि। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने संस्कार, धर्म, संस्कृति, मानवीय मूल्यों, नैतिकता इत्यादि को भी सीखता है। समाजीकरण के महत्वपूर्ण घटकों में परिवार, समाज एवं समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

रॉस के अनुसार, "समाजीकरण सहयोग करने वाले व्यक्तियों में 'हम' भावना का विकास करता है और उनमें एक साथ कार्य करने की इच्छा तथा क्षमता का विकास करता है।"

किंगल यंग के अनुसार, "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है एवं समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है तथा जिसके द्वारा समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।"

4.1.3 समाजीकरण के प्रकार

समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन पर्यंत चलती रहती है, इस समाजीकरण को मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के दृष्टिकोण से विभिन्न भागों में बाँटा है, जो इस प्रकार है

1. प्राथमिक समाजीकरण

यह बालकों में भविष्य में होने वाले समाजीकरण के लिए आधार सृजित करता है। समाजीकरण की इस अवस्था में बालक अपने जीवन की शुरुआत करता है। बालक समाज के माध्यम से ही व्यावहारिक ज्ञान सीखता है। शिक्षा, संस्कृति, मूल्य तथा अभिवृत्ति (attitude) का विकास इसी चरण में होता है। प्राथमिक समाजीकरण (Primary Socialisation) के मुख्य अभिकर्ता (agent) के रूप में परिवार एवं मित्रों (friends) की भूमिका होती है।

2. द्वितीय / गौण समाजीकरण

इसके माध्यम से बालक सामुदायिक तरीके से सीखने के व्यवहार को अपनाता है। इस प्रकार के समाजीकरण का माहौल विद्यालयों, खेल के मैदानों एवं पड़ोसियों के संदर्भ में देखने को मिलता है, जो बालकों को व्यावहारिक रूप से सभ्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.2 समाजीकरण की अवस्थाएँ

समाजीकरण एक निरन्तर चलने वाली सतत प्रक्रिया है। इसका क्रमिक विकास होता है। अध्ययन के दृष्टिकोण से समाजीकरण को निम्न अवस्थाओं में विभाजित किया गया है

1. शैशवकाल

- समाजीकरण की प्रक्रिया जन्म से ही आरम्भ हो जाती है।
- अनुकरण की प्रवृत्ति के आधार पर बच्चों में भाषा तथा अनेक प्रकार के व्यवहार का विकास, जो सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होता है।
- उस अवस्था में बच्चा माता-पिता पर निर्भर रहता। प्रथम वर्ष तक बच्चों में शर्मीलेपन (shyful) के भाव दिखते हैं तथा वह दूसरे का ध्यान अपनी तरफ खींचने का प्रयास करते रहते हैं।

2. प्रारम्भिक बाल्यावस्था

- बच्चों में आक्रामकता की प्रवृत्ति अर्थात् नाराज होने की प्रवृत्ति। आपस में झगड़ने की प्रवृत्ति।
- अभिभावक के निर्देशों को इनकार करने की प्रवृत्ति। सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास तथा जिज्ञासा की प्रवृत्ति।

3. उत्तर बाल्यावस्था

- इस अवस्था में बालकों में अन्य लोगों के विचारों एवं सुझावों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।
- प्रतियोगिता की भावना का विकास। सहानुभूति की भावना का विकास।
- बालकों में पक्षपात एवं भेदभाव की प्रवृत्ति का विकास। बालकों में दायित्व एवं जवाबदेही का विकास।

किशोरावस्था

- समाजीकरण की जटिल अवस्था। समकक्ष मित्रों एवं समूहों के साथ समायोजन करना। सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन अर्थात् सामाजिक सूझ-बूझ का विकास, आत्मविश्वास का मजबूत होना तथा विषम लिंग के प्रति आकर्षण का भाव इत्यादि।
- मित्रों के चयन में नवीन मानदण्ड अर्थात् बालक एवं बालिकाएँ दोनों समान विचार, समान मूल्य तथा समान उद्देश्य इत्यादि से सम्बन्धित मित्रों का चयन करना।
- विचारक जोसेफ का मानना है कि "अधिकांश किशोर ऐसे लोगों को मित्र बनाना चाहते हैं जिन पर विश्वास किया जा सके, जिनसे खुले मन से बात की जा सके।"

जीन पियाजे का

संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

1. संवेदी गामक - वस्तु स्थायित्व अनुकरण प्रतिवर्ती क्रियाएँ-

हाथों व आँखों से ज्ञान, मानसिक चित्रण, खेलना खिलौने तोड़ना

Tricks

अनु और करन ने प्रीति की कुछ वस्तुएँ पूरे मन से चिकित की परन्तु कुछ खिलौने उसकी आँखों के सामने तोड़ दिस

अनु करन	→ अनुकरण
प्रीती	→ प्रतिवर्ती क्रियाएँ
वस्तुएँ	→ वस्तु स्थायित्व का गुण
मन से चित्रित	→ मानसिक चित्रण
खिलौने	
आखे	→ इन्द्रियाँ

2. पूर्व सक्रियात्मक → सूचकता, केन्द्रीयता, जीववाद, आत्मकेन्द्रीयता, विचारों की अनुक्रमण्यता, प्रतीकात्मक खेल

Tricks

प्रतीक ने आत्मा को सूचना दी कि वह उसके जीवन का केन्द्र है।

प्रतीक	→ प्रतीकात्मक खेल
आत्मा	→ आत्मकेन्द्रीयता
सूचना	→ सूचकता
जीवन	→ जीववाद
केन्द्र	→ केन्द्रीयता

3. मूर्त सक्रियात्मक → मूर्त चिंतन, तार्किकता, वर्गीकरण,

संरक्षण, पलटावी गुण (परिवर्तीयता), क्रमवद्धता,
गणितीय संक्रियाओं का ज्ञान

Tricks

रक्षा पलटी और तर्क दिया कि C वर्ग के गणित के छात्रों को क्रमबद्धता का मूर्त चिन्तन करवाओ

रक्षा → संरक्षण

पलटी → पलटावी गुण

तर्क → तार्किकता

वर्ग → वर्गीकरण

गणित → गणितीय संक्रियाओं का ज्ञान

क्रमबद्धता

मूर्त चिन्तन

अमूर्त या औपचारिक → अमूर्त चिन्तन, काल्पनिक चिन्तन,
निश्चयनात्मक चिन्तन, परिपक्वता,

Tricks

कल्पना परिपक्व हो गई है और निगमनात्मक रूप से अमूर्त चिन्तन करती है।

कल्पना → काल्पनिक चिन्तन

परिपक्व → परिपक्वता

निगमनात्मक → चिन्तन

अमूर्त → चिन्तन

वाइगोत्सकी का सामाजिक – सांस्कृतिक विकास का सिद्धान्त

रूस, के मनोवैज्ञानिक

→ हर प्रकार के विकास में समाज का योगदान है।

→ समाज से अन्तःक्रिया के फलस्वरूप सभी प्रकार के विकास होते हैं। जैसी सुविधाएँ – वैसा विकास

→ बाल्यावस्था – गिरोह अवस्था/ गैंग एज

→ किशोरावस्था – समूह के सक्रिय सदस्य

→ मूल उद्देश्य – सहयोगात्मक कार्य, सहपाठी, मिल – जुलकर, समूह कार्य

Trick

रूस के एक शिक्षक ने सामाजिक योगदान के बारे में बताते हुए कक्षा में कहा कि 'किशोर अपने समूह का सक्रिय सदस्य है अतः सभी सहपाई मिलजुलकर उसका सहयोग करें तथा बाला वृष्णा अपना गिरोह बनाएर सामाजिक अन्तःक्रिया के साथ समूह कार्य करें।'

5.4 लॉरेन्स कोह्लबर्ग का नैतिक विकास की अवस्था का सिद्धान्त

लॉरेन्स कोह्लबर्ग ने जीन पियाजे के सिद्धान्त को आधार बनाकर नैतिक विकास की अवस्था का सिद्धान्त दिया, जिसे उसने तीन भागों में विभाजित किया है

5.4.1 पूर्व परम्परागत स्तर या पूर्व नैतिक स्तर (4 से 10 वर्ष)

इस आयु में बालक अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सोचते हैं। नैतिक दुविधाओं से सम्बन्धित प्रश्न उनके लाभ या हानि पर आधारित होते हैं। नैतिक कार्य का सम्बन्ध सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से क्या सही है एवं क्या गलत है इससे सम्बन्धित होता है। यथा-अच्छा या बुरा, सही या गलत की व्याख्या मिलने वाले दण्ड, पुरस्कार अथवा नियमों का समर्थन करने वाले व्यक्तियों की शारीरिक क्षमता या उसके परिणाम से मापी जाती है। इसके अन्तर्गत दो चरण हैं।

1. दण्ड तथा आज्ञापालन अभिमुखता (Punishment and Obedience Orientation) बालकों के मन में आज्ञापालन का भाव दण्ड पर आधारित होता है, इस अवस्था में बालकों में नैतिकता का ज्ञान होता है। बालक स्वयं को परेशानियों से बचाना चाहता है। कोह्लबर्ग का मानना है कि कोई बालक यदि स्वीकृत व्यवहार अपनाता है तो इसका कारण दण्ड से स्वयं को बचाना है।

2. आत्म अभिरुचि तथा प्रतिफल अभिमुखता (Self-Interest and Reward Orientation) इस अवस्था में बालकों का व्यवहार खुलकर सामने नहीं आता है, वह अपनी रुचि को प्राथमिकता देता है। वह पुरस्कार पाने के लिए नियमों का अनुपालन करता है।

5.4.2 परम्परागत नैतिक स्तर (10 से 13 वर्ष)

कोई बालक दूसरे व्यक्ति के नैतिक मानकों को अपने व्यवहार में समाहित करता है। तथा उस मानक के सही एवं गलत पक्ष पर चिंतन के माध्यम से निर्णय करता है, तथा उस पर अपनी सहमति बनाता है। इस स्तर पर बालक अपनी आवश्यकता के साथ-साथ दूसरों की आवश्यकता का भी ध्यान रखता है। इस स्तर के दो भाग हैं

1. अधिकार संरक्षण अभिमुखता (Law and Order Orientation) इस अवस्था में बच्चे नियम एवं व्यवस्था के प्रति जागरूक होते हैं तथा वे नियम एवं व्यवस्था के अनुपालन के पति जवाबदेह होते हैं।

2. अच्छा लड़का या अच्छी लड़की (Good Boy or Good Girl) इस अवस्था में बच्चे में एक-दूसरे का सम्मान करने की भावना होती है तथा दूसरों से भी सम्मान पाने की इच्छा रखते हैं।

5.4.3 उत्तर परम्परागत नैतिक स्तर या आत्म अंगीकृत नैतिक मूल्य (13 वर्ष से ऊपर)

कोह्लबर्ग के मतानुसार नैतिक विकास के परम्परागत स्तर पर नैतिक मूल्य या चारित्रिक मूल्य का सम्बन्ध अच्छे या बुरे कार्य के सन्दर्भ में निहित होता है। बालक बाहरी सामाजिक आशाओं को पूरा करने में रुचि लेता है। बालक अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र के महत्त्व को प्राथमिकता देते हुए एक स्वीकृत व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है।

मानव विकास की वृद्धि एवं विकास के कई आयाम होते हैं। विकास की विविध अवस्थाओं के बालकों में कुछ खास, गुण एवं विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं। इसके अन्तर्गत वयस्क वस्तुओं को निर्धारित कर कार्य करना सीख जाता है। इसके अन्तर्गत दो चरण हैं

1. सामाजिक अनुबन्ध अभिमुखता (Social Contract Orientation) इस अवस्था में बच्चे वही करते हैं जो उन्हें सही लगता है तथा वे यह भी सोचते हैं कि स्थापित नियमों में सुधार की आवश्यकता तो नहीं है। उदाहरणस्वरूप यदि एक व्यक्ति अपने बच्चों की जान बचाने के लिए दवा की चोरी करता है, तो यहाँ देखा जाएगा कि जीवन बचाना यहाँ महत्वपूर्ण है।

2. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता (Universal Ethical Principle Orientation) इस अवस्था में अन्तःकरण (Con science) की आरंभ हो जाती है। अब बच्चे का आचरण दूसरे की प्रतिक्रियाओं का विचार किये बिना उसके आन्तरिक आदर्शों के द्वारा होता है। यहाँ बच्चे के अनुरूप व्यवहार करना है।

बाल- केन्द्रित शिक्षा एवं प्रगतिशील शिक्षा की अवधारणा

बाल केन्द्रित शिक्षा –

- बाद केन्द्रित शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जिसमें बालक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु होता है
- बालक का स्थान प्राथमिक तथा शिक्षक का स्थान गौवा (द्वितीय) होता है।
- बालक के सर्वांगीण "विकास पर जोर दिया जाता है।
- इसके अनुसार शिक्षक को बालक को समझना अति आवश्यक हैं अतः शिक्षक को बाल – मनोविज्ञान : का ज्ञान आवश्यक है।
- बाल-केन्द्रित शिक्षा में शिक्षा मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- इस पद्धति में प्रत्येक बालक पर अलग – अलग ध्यान दिया जाता है।
- प्रत्येक बच्चे की रुचि, क्षमता, स्तर सीखने का तरीका, व्यवहार, पृष्ठभूमि आदि का ज्ञान शिक्षक को होना चाहिए।
- पिछड़े, मंदबुद्धि, प्रतिभाशाली बालकों के लिए विशेष पाठ्यक्रम व शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है
- प्रत्येक बच्चे को उसकी योग्यतानुसार शिक्षा दी जाती है।

प्रगतिशील शिक्षा:-

- इसके विकास में जॉन डीवी का विशेष योगदान है।
- प्रगतिशील शिक्षा का एडमात्र उद्देश्य बालक की शक्तियों का विकास है। वैयक्तिक विभिन्नता को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाए।
- प्रगतिशील शिक्षा में प्रोजेक्ट विधि, समस्या समाधान विधि, करके सीखना विधि आदि का प्रयोग किया जाता है

प्रगतिशील शिक्षा के उद्देश्य :-

- बच्चे को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किये जायें।
- 'बच्चे को क्रियाकलाप करने (करके सीखना) की स्वतन्त्रता देना
- सामूहिक क्रियाकलाप में सक्रिय सहभागिता का निर्वाह करे
- विद्यार्थियों को स्वयं ही सामाजिक समस्याओं के सुलझाने में सक्षम बनाना
- समय सारणी, बैठने की व्यवस्था, शिक्षण पद्धतियाँ आदि में लचीलापन
- बालक के मनोविज्ञान को समझना
- बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देना।
- बालक की इच्छा एवं रुचि, भूल प्रवृत्तियाँ, प्रेरणा संवेग, आर्थिक – सामाजिक स्तर आदि को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान करना)
- शिक्षा विधि व अधिगम को व्यवहारिक बनाना

बुद्धि निर्माण एवं बहुआयामी बुद्धि

Canstruct of Intelligence and Multi-dimensi Intelligence.

बुद्धि :-

वैश्लर के अनुसार बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्ता करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है।

वुडवर्थ के अनुसार, बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।

थार्नडाइक के अनुसार सत्य या तथ्य के दृष्टिकोण से उत्तम प्रतिक्रियाओं की शक्ति ही बुद्धि है।

बुद्धि के सिद्धान्त Theories of Intelligence..

एक कारक सिद्धान्त (one factor Theory) :-

इसका प्रतिपादन बिने ने किया और इस सिद्धान्त का समर्थन कर इसको आगे बढ़ाने का श्रेय टर्नन और स्टैन जैसे मनोवैज्ञानिकों की है।

→ इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बुद्धि एक अविभाज्य इकाई है।

द्विकारक सिद्धान्त (Two factor theory):-

इसका प्रतिपादन स्पीयरमैन ने किया। उनका

मानना है कि, प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की

बुद्धि होती है - 1. सामान्य बुद्धि

2. विशिष्ट बुद्धि

बहुकारक सिद्धान्त (Multi factor theory):-

इसका प्रतिपादन थार्नडाइक ने किया। उन्होंने कहा कि बुद्धि की रचना बहुत से छोटे-छोटे तत्वों या कारकों के मिलने से होती है।

(7) गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त (Gardner's theory of multiple intelligence) – इस सिद्धान्त का विकास गार्डनर (Gardner, 1983) द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त में गार्डनर ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि का स्वरूप एकाकी (singular) न होकर बहुकारकीय होता है। उनके इस सिद्धान्त का आधार उनके द्वारा न्यूरोमनोविज्ञान (neuropsychology) तथा मनोमैट्रिक विधियों (psychometric methods) के क्षेत्र में किए गए शोध हैं। इस सिद्धान्त में स्पष्टतः उन कसौटियों पर भी बल डाला गया है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि विशेष क्षमता एक अलग बुद्धि (separate intelligence) है या नहीं। जैसे, मस्तिष्कीय क्षति होने से व्यक्ति की एक विशेष क्षमता (capacity) यदि प्रभावित हो जाती है परंतु उसका प्रभाव अन्य क्षमताओं पर नहीं पड़ता है, तो उस प्रभावित क्षमता को एक अलग बुद्धि (separate intelligence) माना जा सकता है। उसी तरह से कुछ व्यक्तियों में एक खास तरह की क्षमता असाधारण मात्रा में होती है जो अपने आप, इस सिद्धान्त की कसौटी के अनुसार, एक अलग बुद्धि की श्रेणी की योग्यता रखती है।

इन सब तरह की कसौटियों का उपयोग करते हुए गार्डनर ने मूलतः सात तरह की बुद्धि का वर्णन किया। 1998 में उन्होंने इसमें आठवाँ प्रकार तथा 2000 में उन्होंने नौवाँ प्रकार भी जोड़ा। इस तरह से गार्डनर के अनुसार अभी बुद्धि के नौ प्रकार हैं जो निम्नांकित हैं-

(i) भाषाई बुद्धि (Linguistic intelligence) — भाषाई बुद्धि में वाक्यों तथा शब्दों की बोध क्षमता (comprehension ability), शब्दावली (vocabulary), शब्दों के क्रमों के बीच के संबंधों को पहचानने की क्षमता आदि सम्मिलित होती है।

(ii) तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical-mathematical intelligence) – इस बुद्धि में तर्क करने की क्षमता, गणितीय समस्याओं का समाधान करने की क्षमता, अंकों के क्रम (sequence) के पीछे छिपे संबंध को पहचानने की क्षमता, सादृश्यता क्षमता आदि सम्मिलित होते हैं।

(iii) स्थानिक बुद्धि (Spatial intelligence) — इसमें स्थानिक चित्र (spatial figures) को मानसिक रूप से परिवर्तन करने की क्षमता तथा स्थानिक कल्पनाशक्ति (spatial visualisation) करने की क्षमता आदि सम्मिलित होती है।

(iv) शारीरिक -गतिक बुद्धि (Body - kinesthetic intelligence) — इस तरह की बुद्धि में अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण रखने की क्षमता तथा वस्तुओं को सावधानीपूर्वक एवं प्रवीण ढंग से (skillfully) घुमाने तथा उपयोग करने की क्षमता सम्मिलित होती है। इस तरह की बुद्धि नर्तकी में तथा व्यायामी (gymnast) में अधिक होती है जिन्हें अपने शरीर की गति पर पर्याप्त नियंत्रण रखना होता है। साथ-ही-साथ इस तरह की बुद्धि की आवश्यकता क्रिकेट खिलाड़ी, टेनिस खिलाड़ी, न्यूरोसर्जन (neurosurgeon) तथा शिल्पकारियों (artisans) आदि में अधिक होती है क्योंकि इन्हें अपनी शारीरिक गति को नियंत्रित करने में वस्तुओं का उपयोग प्रवीणतापूर्वक (skillfully) करना पड़ता है।

(v) सांगीतिक बुद्धि (Musical intelligence) – इस बुद्धि में तारत्व (pitch) तथा लय (rhythm) को सही-सही ढंग से प्रत्यक्ष करने की क्षमता सम्मिलित होती है। इसमें सांगीतिक सामर्थ्य (musical competence) एवं निपुणता विकसित करने की क्षमता भी सम्मिलित होती है। इस तरह की बुद्धि संगीतकार तथा गीतकार में अधिक होती है।

(vi) व्यक्तिगत-आत्मन् बुद्धि (Personal self intelligence) - इस तरह की बुद्धि में अपने भावों एवं संवेगों को मॉनीटर करने की क्षमता, उनमें विभेद करने की क्षमता तथा मानव व्यवहार को निर्देशित करने में उन सूचनाओं को उपयोग करने की क्षमता आदि सम्मिलित होती है। इसे अंतरावैयक्तिक बुद्धि (intrapersonal intelligence) भी कहा जाता है।

(vii) व्यक्तिगत-अन्य बुद्धि (Personal-others intelligence) – इस तरह की बुद्धि में दूसरे व्यक्तियों की प्रेरणाओं, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को समझने की क्षमता तथा उनकी मनोदशाओं (moods) एवं चित्तप्रकृति मॉनीटर करके किसी नई परिस्थिति में किस तरह से व्यवहार करेगा, के बारे में पूर्वकथन करने की क्षमता आदि होती है। इसे अंतरवैयक्तिक बुद्धि (interpersonal intelligence) भी कहा गया है।

(viii) प्रकृतिवादी बुद्धि (Naturalistic intelligence) – गार्डनर ने बुद्धि के इस प्रकार को 1998 के संशोधन के बाद जोड़ा है। इससे तात्पर्य व्यक्ति में प्रकृति (nature) में जो पैटर्न (patterns) तथा सममिति (symmetry) मौजूद होते हैं, उसे सही-सही पहचान करने की क्षमता से होती है। इस ढंग की बुद्धि किसानों, जैवविज्ञानी (biologist) तथा वनस्पति वैज्ञानिक (Botanist) आदि में अधिक होता है।

(ix) अस्तित्ववादी बुद्धि (Existentialistic intelligence) - गार्डनर ने बुद्धि के इस प्रकार को 2000 के संशोधन में जोड़ा है। इससे तात्पर्य, मानव संसार के बारे में छिपे रहस्यों को जिन्दगी, मौत इस ढंग की बुद्धि दार्शनिक चिंतकों (philosopher thinkers) में अधिक देखने को मिलती है। तथा मानव अनुभूति के वास्तविकता के बारे में उपयुक्त प्रश्न पूछकर जानने की क्षमता से होती है।

समाज निर्माण में लैंगिक मुद्दे Gender Issues in Social Construct

लैंगिक मुद्दे क्या हैं?

- स्त्री, पुरुष, लड़का व लड़की में भेदभाव करना।
- स्त्री व पुरुष को समान अवसर न मिलना।
- स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार न देना।
- लड़कियों को शिक्षा के कम अवसर मिलना

कारण :-

- पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादता
- सामाजिक प्रथाएँ
- संस्कृति
- विचारों की सीमितता

उपाय – एक शिक्षक के रूप में आपके विचार क्या होने चाहिए

1. लड़के व लड़कियों को समानता की दृष्टि से देखना
 - लड़के व लड़कियों को समान अवसर देना।
 - " " " समान शिक्षा प्रदान करना
 - कक्षा में लड़के व लड़कियों को समान अधिकार व सम्मान देना चाहिए
 - लड़कियों को लड़कों की भाँति खेल द में समान रूप से भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करना।

वैयक्तिक विभिन्नता Individual Difference...

किन्हीं दो व्यक्तियों की आदत, शीलगुण, बुद्धि एवं अन्य व्यवहारों में जो अन्तर होता है उसे वैयक्तिक विभिन्नता कहा जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक विभिन्नता शारीरिक एवं मानसिक गुणों में हो सकती
परिभाषा → जेम्स ड्रेवर के अनुसार, कोई व्यक्ति अपने समूह के शारीरिक तथा मानसिक गुणों के औसत से जितनी भिन्नता रखता है, उसे वैयक्तिक "कहते हैं।"

वैयक्तिक भिन्नता के क्षेत्र या प्रकार

1. शारीरिक लक्षण - प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक रूप से भिन्न होता है, जैसे कोई सांवला, कोई गोरा, कोई लम्बा, कोई छोटा, किसी की आँखें भूरी हो किसी की नीली होती है। यहाँ तक कि जुड़वा बच्चों में भी कुछ वैयक्तिक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।
2. बुद्धि → हुँछ व्यक्ति निम्न बुद्धि के, कुछ औसत तथा कुछ उच्च बुद्धि के होते हैं।
3. रुचि → प्रत्येक व्यक्ति की साचू भिन्न-भिन्न होती है, जैसे किसी बच्चे को गणित पसन्द है तो किसी को इंग्लिश।
4. संवेग → संवेगात्मक अभिव्यक्तियों में भी वैयक्तिक, विभिन्नता पायी जाती है। कुछ लोगों में संवेगात्मक अभिव्यक्ति कम होती है तथा कुछ में ज्यादा; जैसे – गुस्सा प्रेम, स्नेह आदि

5. सामाजिक गुण → प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक गुण भिन्न-भिन्न होते हैं।
6. भाषा → भाषा विकास में भी वैयक्तिक विभिन्नता देखने को मिलती है।
7. सीखने का तरीका → प्रत्येक बच्चों का सीखने का तरीका (Learning Style) भिन्न-भिन्न होता है। जैसे कोई बच्चा सुनकर जल्दी सीखता है तो कोई करके सिखता है।
8. यौन → यौन (Sex) के कारण शारीरिक अन्तर के अलावा भी लड़के व लड़कियों विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं; जैसे लड़कियाँ 'परियों की कहानी' तथा लड़के बहादुरी की कहानी सुनना पसन्द करते हैं।
9. व्यक्तित्व (Personality) – व्यक्तित्व में भी वैयक्तिक विभिन्नता देखने को मिलती है। जैसे कुछ व्यक्ति अन्तर्मुखी तथा कुछ व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं।
अन्य → इनके अलावा मानसिक विकास विद्यालय उपलब्धि क्रियात्मक योग्यता सृजनात्मकता, विशिष्ट योग्यताएँ अभिक्षमता आदि में भी वैयक्तिक विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

वैयक्तिक विभिन्नता के कारण :-

1. आनुवंशिकता
2. वातावरण
3. प्रजाति एवं राष्ट्रीयता
4. आयु एवं बुद्धि
5. परिपक्वता
6. लिंग
7. आर्थिक-सामाजिक स्थिति
8. शिक्षा
9. संस्कृति आदि

21.1.1 अभिप्रेरणा की संकल्पना

- मानव व्यवहार को निर्देशित करने में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है।
- अभिप्रेरणा की अनेक विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम यह हमें अपने निर्धारित उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करती है तथा अपने उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए हमें अभिप्रेरित और क्रियाशील रखती है।
- अभिप्रेरणा की कमी हमें शिथिल (कमजोर) और विचलित अनुभव कराएगी और अधिक अभिप्रेरणा हमें अपने उद्देश्य से भटका देगी। इस प्रकार हमें एक सन्तुलित प्रेरणा या संयमित स्तर पर उत्तेजना की आवश्यकता होती है।
- दूसरी ओर हम कुछ बाह्य उद्दीपनों; जैसे— रुपए, अच्छे अंक, भोजन आदि को प्राप्त करने वाली उत्तेजनाएँ मानकर एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए प्रेरित होते हैं; क्योंकि ये उत्तेजनाएँ व्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण करने को प्रेरित करती हैं।
- अभिप्रेरणा व्यक्ति के विचारों और आकांक्षाओं का परिणाम है। यह दो प्रकार की हो सकती है— स्वाभाविक अभिप्रेरणा जो व्यक्ति में अन्दर से आती है, और यह किसी कार्य को करने से प्राप्त हुई प्रसन्नता पर निर्भर करती है तथा बाह्य अभिप्रेरणा जो कि बाहरी पुरस्कारों; जैसे- रुपए, वेतन और प्राप्तांकों आदि पर निर्भर करती है।
- जब हम मेहनत से कार्य करते हैं और उच्च श्रेणी का परिणाम पाते हैं, तब प्रेरणा आन्तरिक होती है बाह्य नहीं।
- हम बाह्य पुरस्कारों से भी प्रभावित होते हैं। जीवन में दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाएँ महत्वपूर्ण हैं।
- आवश्यक अभिप्रेरणाओं को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जा सकता है। अन्ततः अभिप्रेरक आवश्यकताओं को क्रमबद्ध करते हैं; जैसे - मूल प्रेरक, भूख और प्यास जिन्हें सबसे पहले सन्तुष्ट करना आवश्यक है। तत्पश्चात् उच्चकोटि की आवश्यकताएँ, जैसे- उपलब्धि, सन्तुष्टि, शक्ति आदि का क्रम आता है।

21.1.2 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणा के दो प्रकार होते हैं-

1. **आन्तरिक अभिप्रेरणा** (Internal Motivation) वे आन्तरिक शक्तियाँ, जो व्यक्ति के व्यवहार को उत्तेजित करती हैं, आन्तरिक अभिप्रेरणा कहलाती हैं। भूख, प्यास, नींद, प्यार तथा काम इसी का उदाहरण है।
2. **बाह्य अभिप्रेरणा** (External Motivation) पहले से निर्धारित कोई ऐसा उद्देश्य जिसे प्राप्त करना व्यक्ति का उद्देश्य हो, बाह्य अभिप्रेरणा कहलाती है। रुचि, इच्छा, आत्मसम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं विशेष उपलब्धि, सत्ताप्रेरक तथा पुरस्कार इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

21.1.3 अभिप्रेरणा की विशेषताएँ

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं, जो इस प्रकार हैं-

- अभिप्रेरणा गतिशीलता/क्रियाशीलता की प्रतीक होती है। भावनात्मक प्रदर्शन के द्वारा छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिए अध्यापक इस विधि का प्रयोग करता है। किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए अभिप्रेरण स्रोत है।
- समान्यतया अभिप्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को उत्तेजित करती है। अभिप्रेरित व्यवहार अर्जित तथा जाग्रत होता है। यह किसी क्रिया को उत्तेजित रखने, निरन्तरता बनाए रखने एवं नियन्त्रित रखने की प्रक्रिया है।
- अभिप्रेरणा किसी कार्य को करने के लिए ऊर्जा (Energy) प्रदान करती है।

प्रेरणा (Motivation) के तत्त्व

प्रेरणा दो प्रकार की होती है, सकारात्मक और नकारात्मक।

सकारात्मक प्रेरणा (Positive Motivation) इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। इस कार्य को करने से उसे सुख और सन्तोष – प्राप्त होता है।

नकारात्मक प्रेरणा (Negative Motivation) इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से न करके, किसी दूसरे की इच्छा या बाह्य प्रभाव के कारण करता है। इस प्रकार को करने से उसे किसी वांछनीय या निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

अधिगम का मूल्यांकन

Evaluation of Learning

मूल्यांकन → मूल्यांकन शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया का एक सोपान है जिसमें शिक्षक यह सुनिश्चित करता है कि उसके द्वारा की गयी शिक्षण व्यवस्था तथा शिक्षण को आगे बढ़ाने की क्रियाएँ कितनी सफल रही हैं।

अधिगम का मूल्यांकन → यह मूल्यांकन शिक्षा प्राप्ति के बाद किया जाता है अर्थात् जब शिक्षक बच्चों को सिखा देता है तब वह मूल्यांकन के द्वारा यह जाँचता है की शिक्षार्थियों ने कितना सिखा है।

अधिगम के लिए मूल्यांकन → इसमें शिक्षक बच्चों को सिखाने के लिए बच्चों के उस topic अवधारणा के प्रति ज्ञान का मूल्यांकन करता है। जैसे शिक्षक कक्षा के कार्य को एकत्र करता है, उन्हें पढ़ता है, उसके बाद बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योजना बनाता है

'अधिगम (सीखना) के रूप में मूल्यांकन → इसमें शिक्षक बच्चों से अधिगम के रूप में कोई क्रिया- कलाप करवायेगा। यह क्रियाकलाप एक प्रकार से अधिगम है परन्तु शिक्षक उस क्रिया- कलाप के द्वारा बच्चों का मूल्यांकन भी कर लेता है।

विद्यालय आधारित मूल्यांकन –

इसमें शिक्षक को विद्यालय के मापदण्डों को ध्यान में रखकर, मूल्यांकन करना होता है।

→ बच्चों के अंक निर्धारण करने होते हैं।

→ औपचारिक पद्धतियाँ अपनानी होती हैं।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन -

व्यापक का अर्थ है – निरन्तर या लगातार व्यापक का अर्थ है – सर्वांगीण एवं विस्तृत अर्थात् बच्चों का निरन्तर एवं सर्वांगीण विकास का अर्थात् सभी क्षेत्रों का मूल्यांकन ही सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन कहलाता है।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की विशेषताएँ –

→ पाठ्यक्रम कुल अवधि (जैसे - 1 वर्ष) के बीच - बीच में बच्चों का आंकलन करना यह अवधि एक सप्ताह, 1 माह, उमाह या 6 माह हो सकती है।

→ सतत् मूल्यांकन इसलिए आवश्यक है ताकि, बच्चा कितना सीख रहा है, उसकी त्रुटियाँ क्या हैं, शिक्षक की शिक्षण पद्धति कितना काम कर रही है आदि का पता लगाया जा सके तथा आगे उसमें सुधार किया जा सके।

→ बच्चे का सर्वांगीण विकास अर्थात् सभी क्षेत्रों का मूल्यांकन होना चाहिए।

→ सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में बच्चे की बुद्धि, रुचि, शिक्षा का स्तर सीखने का तरीका कार्य करने की क्षमता सामाजिक विकास, संज्ञानात्मक विकास भाषा विकास तार्किक क्षमता आर्थिक सामाजिक स्तर पृष्ठभूमि आदि सब कुछ सम्मिलित किया जाता है।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की विधियाँ –

1. निरीक्षण (observation)
2. प्रश्नावली (Exerese)
3. प्रश्नोत्तर (Questionnaire)
4. साक्षात्कार (Interview)
5. जाँच सूची (check-List)
6. विवरण (Interpretation)
7. रिकोर्ड (Record)

नोट → प्राथमिक स्तर पर बच्चे का रिकार्ड रखने का best तरीका वे साधन पोर्टफोलियो है।

उपलब्धि का मूल्यांकन एवं प्रश्नों का निर्माण

Evaluation of Achievement and Formation of Questions

उपलब्धि का मूल्यांकन – उपलब्धि का मूल्यांकन विद्यालय आधारित मूल्यांकन का ही एक रूप है। इसमें मिलयंकन के द्वारा यह पता लगाया जाता है कि बच्चे के उपलब्धि स्तर में कितना परिवर्तन हुआ है।

इसके निर्धारण में अंक, ग्रेट, फ्रीड आदि पद्धतियों का प्रयोग होता है।

रचनात्मक मूल्यांकन – ब्लैक और विलियम के अनुसार " रचनात्मक मूल्यांकन प्रायः इससे अधिक कुछ नहीं होता कि मूल्यांकन बारम्बार किया जाता है और अध्यापन की तरह उसी समय किया जाता है।

- रचनात्मक मूल्यांकन का मुख्य कार्य छात्रों को फीडबैक उपलब्ध कराना है।
- प्रक्रिया → 1. सबसे पहले शिक्षक एक क्षेत्र का निर्धारण करता है जो उसने पढ़ाया है।
2. मूल्यांकन करता है। अंक या ग्रेड निर्धारित करता है।
3. बच्चों के साथ फीडबैक देकर चर्चा करता है।
4. त्रुटियों की जाँच करता है और उन्हें पूरा करने की योजना बनाता है
- नोट → रचनात्मक मूल्यांकन, निदानात्मक मूल्यांकन के बहुत समीप है।

प्रश्नों का निर्माण –

प्रश्नों का निर्माण करना शिक्षक के लिए एक परीक्षण है। उपयुक्त प्रश्नों का निर्माण करना शिक्षक की एक कला है।

अच्छे प्रश्न की विशेषताएँ:-

1. प्रश्न किसी उद्देश्य पर आधारित होने चाहिए।
2. प्रश्न में वस्तुनिष्ठता एवं व्यापकता होनी चाहिए।
3. प्रश्न विश्वसनीय होने चाहिए।
4. प्रश्न की भाषा बच्चे के समझने योग्य होनी चाहिए
5. प्रश्न का कठिनाई स्तर बच्चों के स्तर के अनुसार होना चाहिए
6. प्रश्न की प्रकृति लचीली होनी चाहिए
7. प्रश्न का रूप कक्षा स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

प्रश्नों के प्रकार

1. निबन्धात्मक प्रश्न → ऐसे प्रश्न मुख्य रूप से बड़ी कक्षाओं के लिए अधिक उपयोगी होते हैं।
→ निबन्धात्मक प्रश्नों में वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता की कमी होती है।
2. लघु उत्तरीय प्रश्न – ये प्रश्न कुछ हद तक प्राथमिक स्तर पर पूछे जा सकते हैं
→ इनमें वस्तुनिष्ठता व विश्वसनीयता अपेक्षाकृत अधिक होती है।
→ ऐसे प्रश्न वार्षिक परीक्षाओं में भी पूछे जा सकते हैं।
3. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न
4. चित्रात्मक प्रश्न → ये छोटी कक्षाओं के लिए बहुत उपयोगी होते हैं।

- 5. रिकट स्थान वाले प्रश्न
- 6. मिलान करने वाले प्रश्न
- 7. बहुविकल्पीय प्रश्न आदि

विविध पृष्ठभूमि के बालकों की पहचान

Identifying the Child of Diverse Backgroun

निर्धन व पिछड़े वर्ग के बच्चे → इस श्रेणी में वे बच्चे आते हैं जो बहुत गरीब परिवार से होते हैं उनके लिए अपनी आजीविका चलाने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ईस लिए ने शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते ।

→ इन स्थितियों को देखते हुआ शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 लागू हुआ ।

→ मध्यान्ह भोजन स्कीम भी इन्हीं आवश्यकता को देखते हुए लागू की गयी ।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति के बच्चे → ये दोनो ऐसे समुदाय हैं जिन्हें पूर्व से ही समाज से अलग रखा गया तथा उन्हें समानता का अधिकार नहीं दिया गया।

→ इस वर्ग के बच्चों को औपचारिक शिक्षा से दूर रखा जाता था।

विशेष बच्चे:- ये वे बच्चे हैं जो सामान्य बच्चों से किन्ही कारणों की वजह से दिखने व योग्यताओं में भिन्न होते हैं। इन्हें दिव्यांगता की श्रेणी में रखकर अलग कर दिया गया।

समावेशी शिक्षा :- समावेशी शिक्षा ऐसी है जहाँ दिव्यांगता वाले तथा बिना दिव्यांगता वाले, तथा सभी वर्गों के बच्चे एक ही कक्षा मे एक साथ बैठकर शिक्षा ग्रहण करते है ।

→ 'समावेशी शिक्षा में सभी को समान अधिकार दिया जाता चाहे वह किसी भी वर्ग जाती धर्म का हो।

→ समावेशी शिक्षा में कोई भेदभाव नहीं होता।

समावेशी शिक्षा के उद्देश्य

1. सभी जाति, वर्ग, श्रेणी के बच्चों का समावेशन करना
2. सभी प्रकार के बच्चों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करना।

3. निम्न स्तर के बच्चों के स्तर में सुधार लाना ।
4. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को मुख्य धारा से जोड़ना।

दिव्यांग तथा अधिगम अशक्तता वाले बालकों की पहचान

Identifying the Disabled and Learning Disabled Children

दिव्यांग बालक:- क्रों एण्ड को अनुसार

ऐसे बालक जिनमें ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या उसे सीमित रखता है ऐसे बालक को हम दिव्यांग बालक ख सकते है ।

दिव्यांगता के प्रकार :- RPWD ACT 2016 के अनुसार

1. Locomotor Disability
2. Leprosy Cured Person,
3. Cerebral Palsy
4. Dusarfirm
5. Muscular Distrophy
6. Aciol Attack Victims
7. Blindness
8. Low Vision.
9. Deaf
10. Hard of Hearing.
11. Speech and Language disability
12. Intellectual disability
13. Specific learning disability
14. Autism Spectrum Disorder
15. Mental illness

- 16 Multiple Sclerosis.
- 17. Parkinson's Disease
- 18. Haemophilia
- 19. Thalassemia
- 20. Sickle Cell Disease
- 21. Multiple Disability (including Degfelindness)

अधिगम अशक्तता (Learning Disability)

यह एक प्रकार का अधिगम सम्बंधी दोष होता है जिसमें बच्चों को पढ़ाने लिखने मौखिक अभिव्यक्ति शब्दों का शुद्ध उच्चारण, गणित को समझने, तार्किक चिन्तन करने आदि में कठिनाई होती है ।

अधिगम अशक्तता के प्रकार :- कुछ मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं

1. अफेज्या (Aphasia) :- भाषा या सम्प्रेषण अधिगम अशक्तता को अफेज्या कहा जाता है। इस स्थिति में बच्चों को भाषा को समझने तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में कठिनाई होती है
2. डिस्ग्राफिया (Disgraphia): डिस्ग्राफिया लिखने संबंधी, अशक्तता को कहा जाता है।
3. डिस्लेक्सिया (Dyslexia) :- यह पढ़ने से संबंधित दोष है। इसमें बच्चा b तथा d, was तथा saw आदि अक्षरों में अन्तर नहीं कर पाता है। इसके 'अतिरिक्त भी कई पठन दोष होते हैं।
4. डिस्कैल्युलिया (Dyscalculia) :- इस दोष से पीड़ित बच्चे को गणित को समझने में, गणना करने में, सिद्धान्तों को याद रखने में कठिनाई होती है।
5. अलेक्सिया (Alexia) यदि मस्तिष्क में किसी प्रकार की क्षति होने पर शब्दों को देखने पढ़ने में कठिनाई होती है तो उसे अलेक्सिया कहते हैं।
6. अप्रोक्सिया (Aproxia):- यह मांसपेशी संबंधी को लिखने चलने, टहलने, बोलने आदि में कठिनाई हो सकती है यह भी मस्तिष्क में क्षति के कारण होता है।
7. दिस्थिमीया (Dysthemia):- यह एक प्रकार की, गम्भीर तनाव की स्थिति होती है। इसमें सदैव व्यक्ति का मन उदास रहता है।
8. डिस्मोरफिया (Dysmorphia) :- यह भी एक प्रकार का मनोविकार है। इसमें व्यक्ति को यह भ्रम रहता है कि उसके शरीर के कुछ अंग छोटे या अपूर्ण हैं। वह अपनी तुलना दूसरे व्यक्ति से करने लगता है।

प्रतिभाशाली, सृजनात्मक तथा विशिष्ट बालकों की पहचान

Identifying the Talented, Creative and Especially – abled Children

विशिष्ट बालक :- विशिष्ट बालकों को दो श्रेणी में रखा जा सकता है

1. उच्च बुद्धिलब्धि वाले विशिष्ट बालक :-

→ प्रतिभाशाली बालक

→ सृजनात्मक बालक

2. निम्न बुद्धिलब्धि (IQ) वाले विशिष्ट बालक :-

→ मंदबुद्धि बालक

→ पिछड़े बालक

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान :-

→ इनकी बुद्धि लब्धि 140 से अधिक होती है।

→ मानसिक प्रक्रिया में तीव्रता

→ मौलिक चिन्तन की क्षमता

→ उच्च उपलब्धियाँ

→ विशाल, शब्दकोश

→ बुद्धि एवं व्यवहारिक ज्ञान अधिक होना

→ अत्यन्त जिज्ञासु प्रवृत्ति

→ सामान्य अध्ययन में रुचि

→ उच्च स्तर का संज्ञानात्मक व मानसिक विकास

→ अपने साथियों की तुलना में अधिक ज्ञान

→ प्रश्नों का उत्तर तुरन्त देना

सृजनात्मक बालकों की पहचान :-

- बुद्धिलब्धि 120 से 140
- सृजनात्मक चिन्तन
- अधिक क्रियाशील रहना।
- सृजनशील बालकों का दृष्टिकोण सामान्य व्यक्ति से भिन्न होता है।
- सवेदनशीलता अधिक होना
- स्वायत्तता का भाव
- किसी भी समस्या का समाधान तुरन्त ढूँढना।
- स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेना।
- नवीनतम विचार।
- नये – नये कार्यों में रुचि लेना।

पिछड़े बालक :- वे छात्र जो अपने आयु वर्ग के बच्चों की अपेक्षा शैक्षिक उपलब्धि में पीछे रह जाते हैं पिछड़े बालक कहलाते हैं। इसके कारण मानसिक शारीरिक या सामाजिक हो सकते हैं।

मंद बुद्धि बालक :- वे बालक जिनकी IQ बुद्धिलब्धि 90 से कम होती है मंद बुद्धि बालक कहलाते हैं इनका शैक्षणिक, सामाजिक, भाषागत विकास निम्न रहेता है

समस्यात्मक बालक :- वे बालक जिनका व्यवहार असामान्य होता है तथा समाज द्वारा अस्वीकृत होता है जैसे - चोरी करना झूठ बोलना, विद्यालय से भाग जाना, उरा हुआ रहना, अकेले रहना, मित्र न बनाना आदि।

बाल अपराध :- इसके अन्तर्गत वे कार्य आते है जो कानूनी तौर पर गलत होते हैं, जैसे :- धूम्रपान करना, चोरी करना, लड़ाई झगडा करना, दूसरों को सुलाना, यौन – सम्बंधों को लेकर आक्रामक होना आदि

बच्चों में सोचना एवं सीखना

Thinking and Learning in Children

चिन्तन (Thinking):- कागन तथा हेमैन के अनुसार, प्रतिभाओं प्रतीकों संप्रत्ययों, नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़ – तोड़ को चिन्तन कहा जाता है।

चिन्तन (सोचना) के प्रकार :- इसे मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. अभिसारी चिन्तन :- इस तरह के चिन्तन को निगमनात्मक चिन्तन भी कहा जाता है। अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों के आधार पर कोई सही निष्कर्ष निकालता है। जैसे 5 और 2 की गुना करने पर क्या आएगा यह सोचना अभिसारी चिन्तन का उदाहरण है
2. अपसारी या सृजनात्मक चिन्तन :- इस तरह के चिन्तन को आगमनात्मक चिन्तन कहा जाता है। इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति दिए गए तथ्यों में अपनी ओर से कुछ नया जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस प्रकार का चिन्तन सृजनात्मक बालकों बालकों में पाया जाता है
3. आलोचनात्मक चिन्तन :- इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उसके गुण – दोष की परख कर लेता है।

चिन्तन के विकास के लिए शिक्षक को क्या करना चाहिए –

- बच्चे को चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित करे।
- चिन्तन के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करे।
- 'बच्चों' गहन सोच वाले प्रश्नोत्तर करे
- कक्षा में किसी एक विषय चर्चा करे।
- यदि ऐसा हो तो..... वाले प्रश्नों की बाहुल्यता।

सीखना (learning)

सामान्य अर्थ में सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना नहीं कह सकते। जैसे- भूख, दवा, थकान आदि से हुए, परिवर्तन को सीखना नहीं कहते। मनोविज्ञान में सीखने से तात्पर्य सिर्फ उन्हीं स्थायी परिवर्तनों से है जो अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप हों।

गेगनी के अनुसार सीखने के प्रकार :-

8. समस्या समाधान सीखना
7. नियम 1 सीखना
6. संप्रत्यय सीखना
5. विभेदीकरण सीखना
4. शाब्दिक साहचर्य सीखना
3. सरल श्रृंखला का सीखना
2. उडीपन अनुक्रिया सीखना
1. सांकेतिक सीखना

Whatsapp for notes - 8532355503

शिक्षण अधिगम की मूल प्रक्रियाएँ

Basic Processes of Teaching Learning

→ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें शिक्षक बच्चे को किसी उद्देश्य के लिए विभिन्न शिक्षण विधियों द्वारा कोई संप्रत्यय सिखाता है

→ इसके मुख्य रूप से तीन बिन्दु (प्रक्रियाएँ) हैं-

1. उद्देश्य

2 अधिगम अनुभव क्रियाएँ

3. विद्यार्थी का मूल्य निर्धारण (मूल्यांकन)

शिक्षण के अनुभव क्रियाएँ में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसलिए इसे प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक को निम्न योग्यताएँ होनी चाहिए -

⇒ शिक्षक को शिक्षा के लक्ष्य और उसके उद्देश्य के बारे में पता हो ।

⇒ बाल मनोविज्ञान का ज्ञान हो।

⇒ प्रभावशाली साधनों का प्रयोग जानता हो।

⇒ शिक्षण विधियों का ज्ञान हो।

बच्चा एक समस्या समाधक तथा एक वैज्ञानिक अन्वेषक के रूप में

Child as a Problem-Solver and a scientific Investigator

बच्चा एक समस्या समाधक के रूप में :- बच्चे का यह कौशल आयु, व अनुभव के साथ-साथ बढ़ता रहता है किशोरावस्था में बालक समस्या का समाधान करने योग्य बन जाता है ।

बच्चे की आती है जीवन में अनेक समस्याएँ तथा उन्हें उसको स्वयं ही हल करना होता है। बच्चे के इस कौशल को बढ़ावा देने में शिक्षक उसकी सहायता करता हैं।

समस्या समाधान विधि के सोपान -

1. समस्या को समझना
2. सम्बंधित आँकड़ों को इकट्ठा करना
3. क्रियान्वन
4. निष्कर्ष
5. मूल्यांकन

बच्चा एक वैज्ञानिक अन्वेषक के रूप में :-

यह पहलू भी समस्या समाधान से संबंधित ही है। जब बच्चा किसी समस्या को हल करने के लिए अपने अनुभव तथा ज्ञान का प्रयोग करता है तो वह समस्या के समाधान खोज लेता है। इस दौरान वह नये नियम व सिद्धान्तों की खोज भी कर लेता है तथा नए ज्ञान का निर्माण करता है तथा धीरे-धीरे वह अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान करने लगता है।

संज्ञान तथा संवेग Cognition and Emotion

संज्ञानात्मक विकास :- संज्ञान से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदन (sensation) प्रत्यक्षण (perception), प्रतिमा (imagery) धारणा (retention), प्रत्याहान (recall) समस्या समाधान चिन्तन (thinking) तर्कणा (reasoning) जैसी मानसिक संक्रियाएं सम्मिलित होती हैं। अतः संज्ञान से तात्पर्य बालकों में किसी संवेग सूचना को ग्रहण करके उस पर चिन्तन करने तथा क्रमिक रूप से उसे ईस लायक बना देने से होता है जिनका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में करके वे तरह – तरह की समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकें ।

संवेग :- संवेग को अंग्रेजी में emotion कहते हैं। यह लैटिन भाषा के शब्द 'emovere' से बना है जिसका आर्य होता है उत्तेजित करना। अर्थात् संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था का दूसरा नाम है।

गेलडाई → 'संवेग क्रियाओं का उत्तेजक है।' लेकिन संवेग में सिर्फ उत्तेजित अवस्था ही नहीं होती बल्कि कुछ और भी प्रक्रियाएँ होती हैं।



Whatsapp for notes - 8532855503

instagram- theshadabalam / JOIN TELEGRAM - SA TEACHER ACADEMY